Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

बिहारी के अध्ययन की परम्परा का अवलोकन

डॉ. सुकेश लोहार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी।

शोध सारांश – बिहारी के मूल्यांकन की एक परंपरा बनती चली गयी। इस दौरान बिहारी पर हुए विचारों की धाराआएँ विभिन्न संगम और शाखाओं के पड़ावों से होकर गुजरीं। इस पुस्तक की परिकल्पना उन्हीं संगमों और शाखाओं को रेखांकित करने की परियोजना को अमली जामा पहनाने की कोशिश का परिणाम है।

मुख्य शब्द– बिहारी, परम्परा, अध्ययन, मूल्यांकन, परिकल्पना, शाखा।

कविवर बिहारी (संवत् 1652) 17वीं सदी में विद्यमान थे। उनके प्रमाणिक जीवनी के बारे में लिखित साक्ष्य बहुत कम मिलते हैं लेकिन उनके जीवनी के बारे में जो भी लेखन हुआ है, उनके साक्ष्य या तो स्वयं कवि की रचनाओं से लिये गये हैं या फिर इतिहास ग्रंथों से। बिहारी के शुरुआती अध्येताओं ने जिन प्रश्नों पर विचार किया है उनके कई पहलू हैं। कविवर बिहारी पर विचार का पहला पहलू उनके जन्म–मृत्यु, पारिवारिक पृष्ठभूमि, बाल्यकाल, यौवन काल, अध्ययन, आश्रय और आश्रयदाता आदि से जुडा हुआ है। बिहारी की पहचान से संबंधित पहलू पर अध्येताओं ने बहुत जोर दिया है क्योंकि हिन्दी साहित्य के इतिहास में देखें तो एक से अधिक बिहारी नामक कवि विद्यमान दिखते हैं। इसलिए उनमें से सतसई के रचनाकार बिहारी कौन है? इस कुहरे को हटाने में बिहारी के आरंभिक अध्येता जुट गये। यह दरअस्ल रचनाकार के जीवनी से संबंधित पक्ष है।

दूसरा पहलू कवि के साहित्यिक परिचय सें संबंधित है। इसमें बिहारी की रचना 'सतसई' के प्रेरणा स्रोत और उनकी युगीन परिस्थितियाँ कैसी थीं। यानी सतसई रचनाकार के रूप में बिहारी ने अपनी पहचान कैसे बनायी इस पक्ष पर विद्वान अध्येताओं ने विचार किया है। सतसई लेखन और मुक्तक लेखन की परंपर में बिहारी का क्या स्थान है और उनका क्या योगदान है। यानी प्राकृत कवियों, संस्कृत कवियों, हिन्दी कवियों और फारसी कवियों का उनकी रचनाओं पर या उनके रचनात्मक व्यक्तित्व पर कैसा या कितना प्रभाव पड़ा। बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती परंपराओं से क्या ग्रहण किया और अपने युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनके किन तत्वों में बदलाव किये। उनके जीवन–दर्शन का काव्य में किस रूप में निवेश हुआ है।

Received: 01 Nov 2019 | Accepted: 29 Nov 2019 | November-December-2019 [2 (6) : 182-186]

तीसरा पहलू उनकी साहित्यिक कृति की विषय–वस्तु, अन्तर्वस्तु और भाषा–शिल्प के विविध पक्षों के विवेचन पर केन्द्रित है। इसके तहत बिहारी के काव्य–कौशल, प्रेम वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, शिख–नख वर्णन, भक्ति भावना, गृहस्थ जीवन और बहुदर्शिता या बहुज्ञता से संबंधित बिन्दुओं पर विचार किया गया है। इसके साथ ही उनके काव्य की शैली, भाषा, अलंकार, गुण और दोषों का विवेचन और विश्लेषण भी किया गया है और परवर्ती कवियों पर उनका प्रभाव किस रूप में पड़ा इसका भी निरीक्षण किया गया है।

चौथा पहलू उनके सात सौ दोहा छंदों के संकलन 'बिहारी सतसई' की टीकाओं के अध्ययन पर आधारित है। हालाँकि दोहों की संख्या को लेकर भी विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। 'बिहारी सतसई' पर टीका लिखी ही नहीं गयी बल्कि इसकी एक लम्बी परंपरा है; इस परंपरा की शुरुआत 18वीं सदी में ही हो गयी थी और यह 19वीं सदी से यात्रा करती हुई 20वीं सदी तक निरंतर चलती आ रही है। 20 वीं सदी में न केवल 'बिहारी सतसई' पर टीकाएँ लिखी गयीं, बल्कि 18वीं–20वीं सदी में लिखी गयी टीकाओं का सम्पादन भी किया गया। इस प्रक्रिया में बिहारी की टीका, टीकाकार और बिहारी के दोहों का भी मूल्यांकन किया गया है। उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो रहा है कि मोटेतौर पर अध्येताओं ने बिहारी पर विचार करते हुए उनसे जुड़ी विविध पहलुओं का अध्ययन किया है।

हिन्दी साहित्य की विवेचना और आलोचना में जब तुलनात्मक अध्ययन की शुरुआत हुई तो रचनाकारों के ऐतिहासिक पक्ष के साथ समकालीन या युगीन कवियों से तुलना का सूत्रपात भी हुआ। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी में जो तुलनात्मक आलोचना या विवेचन की शुरुआत हुई उसमें कवियों के वस्तुगत मूल्यांकन का स्थान विवेचकों की व्यक्तिगत पसंद–नापंसद ने ले लिया। इस दौरान एक कवि को दूसरे कवि से श्रेष्ठ बताने की होड़–सी लग गयी। यह इस आलोचना की सीमा कही जा सकती है लेकिन इससे (यहाँ मुझे मिश्रबंधु, लाला भगवानदीन और कृष्ण बिहारी मिश्र) अनेक ऐसे बिन्दु पर अध्ययन की शुरुआत हुई जो उन कवियों की अन्य कवियों से की गयी तुलना के दौरान निकल कर आयी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कवियों की श्रेष्ठता की बहस में कूदने वाले विद्वान वास्तव में काव्य रसिक थे वे कवियों की रचनाओं के मर्म को इस हद तक आत्मसात करते थे कि वे किसी एक कवि के पक्षधर हो जाते। इन विद्वानों के यहाँ कवियों के विश्लेषण और मूल्यांकन का मापदंड या पैमाना शुद्ध साहित्यिक था।

कवियों या साहित्यकारों की सामाजिक चेतना और पक्षधरता को साहित्य या रचना के मूल्यांकन का मापदंड निर्धारित किये जाने के बाद कवियों से आलोचकों की अपेक्षाएँ बदल गयी इसलिए कवियों और उनके युग के बारे में धारणा भी बदल गयी। अब कवि की साहित्यिक कौशल को देखने के बजाय यह देखा जाने लगा कि उसने अपने 'सामाजिक यथार्थ' को चित्रित करने में कितनी सजगता दिखायी है। इस क्रम में यह भी नहीं देखा जाता कि वह जिस वर्ग से जुड़ा है उसका चित्रण करने में उसने कितनी ईमानदारी

दिखायी है बल्कि इसके विपरीत उनसे यह अपेक्षा की जाने लगी कि उसने समाज के निम्न वर्ग के जीवन यथार्थ का चित्रण किया है या नहीं!

काव्य में शृंगार रस के निवेश को विलासिता और अश्लीलता मानकर उसके वर्णन में प्रवृत्त होने भर से 'मानसिक पतन' मान लेने से साहित्य का कितना नुकसान हुआ है इस पहलू पर भी बिहारी के अध्येताओं ने ध्यान दिलाया है। इस मापदंड का अनुसरण करने वाले विवेचक, आलोचक और इतिहासकारों के यहाँ द्वन्द्व या दुविधा को रेखांकित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में इस बात की त

बिहारी सतसई की लगभग 17 पांडुलिपियों का उल्लेख मिलता है। इन पांडुलिपियों में कुछ प्राप्त होते हैं तो कुछ का उल्लेख मात्र मिलता है। कुछ अधूरे हैं तो कुछ खंडित हैं। इन पांडुलिपियों का संक्षिप्त परिचय सुधाकर पाण्डेय समपदित लल्लूलाल की 'लालचंद्रिका' में दिया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि बिहारी ने स्वयं अपने जीवन काल में सतसई नामक संकलन संभवतः नहीं किया था और न ही उन दोहों को कोई निश्चित क्रम या वर्ण्य विषय के अनुसार उसका विभाजन किया था। इससे यह अनुमान तो लग ही जाता है कि बिहारी ने कोई व्यवस्थित रीति–ग्रंथ की रचना नहीं की थी। उनके पांडुलिपिकर्ताओं ने अपनी रीतिग्रंथ की मनोवृत्ति के अनुकूल बिहारी के दोहों का संकलन किया था। हाँ, यह अलग बात है कि असनी के ठाकुर के 'सतसैया वर्णार्थ' या 'देवकीनंदन तिलक' में वर्णित बिहारी के जीवन वृत्त के अनुसार सतसईं के दोहों के रचनाकार उनकी पत्नी थी जिसने 1400 दोहे बनाये थे, जो बिहारी के नाम से बाद में प्रसिद्ध हो गये। इनपर प्रसन्न होकर आमेर (जयपुर) के राजा जयसिंह ने बिहारी को पुरस्कृत किया। ऐसा माना जाता है कि बाद में इन दोहों में से 700 दोहों को छाँट कर सतसई का संकलन किया गया। इन पांडुलिपियों में 'बिहारी सतसई' के दोहों की संख्या भी निश्चित नहीं दिखती। किसी पांडुलिपि में दोहों की संख्या 712 है तो किसी में 950 अनुष्टुप हैं। इस तरह देखा जाय तो बिहारी की पांडुलिपिकर्ताओं के यहाँ से बिहारी की एक अलग छवि उभर कर आती है।

बिहारी पर जब से अध्ययन की शुरुआत हुई है तब से उनकी 'सतसई' की लगभग पचास से भी अधिक भाष्य, टीका, व्याख्याएँ लिखी जा चुकी हैं। यह बात ध्यान देने वाली है कि जिस तरह बिहारी के दोहों का क्रम और उनका वर्गीकरण उनके पांडुलिपिकर्ताओं ने किया उसी तरह उनके अलग–अलग टीकाकारों ने भी उनके दोहों को संकलित किया और उन्हें निश्चित क्रम दिया देने का प्रयास किया है। बिहारी सतसई पर टीका लिखने वाले टीकाकारों ने भी उन दोहों के वर्ण्य–विषय के आधार पर विभाजन किया। यानी बिहारी की एक छवि हमें उनकी पांडुलिपियों में मिलती है हो दूसरी छवि उनकी टीकाओं में मिलती। इस तरह बिहारी की छवि शनैः शनैः निर्मित होती चली गयी। बिहारी सतसई की टीकाओं के रूप और उनकी भाषाएँ भी एक से अधिक है। इन टीकाकारों ने उनके दोहों पर अलग–अलग भाषाओं और रूपों में टीकाएँ लिखीं। बिहारी सतसई की टीकाएँ या अनुवाद संस्कृत, ब्रज, उर्दू, फारसी, खड़ी बोली, अंग्रेजी

और बाग्ला भाषाओं में किये गये हैं। इसके साथ ही, उनकी टीकाएँ पद्यों यानी विविध छंदों जैसे कवित्त–सवैया, कुंडलियाँ, दोहों में तो मिलती ही हैं यह गद्य में भी मिलती है। कुछ टीकाओं में तो गद्य और पद्य दोनों का मिश्रित रूप भी मिलता है। इससे बिहारी की लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। उनकी पांडुलिपियों और टीकाओं के प्राप्ति स्थलों को देखा जाय तो पता चलता है कि बिहारी की पहुँच वर्तमान उत्तर प्रदेश, बुंदेलखंड, राजस्थान, गुजरात आदि तक थी।

बिहारी पर उपलब्ध सामग्रियाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास, विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, बिहारी की सतसई की टीका, उनमें बिहारी के जीवन और रचनाकर्म का मूल्यांकन, बिहारी सतसई पर लिखी गयी टीकाओं का सम्पादन और उसमें बिहारी का मूल्यांकन, बिहारी के व्यक्तित्व और रचनाकर्म को लेकर लिखे गये स्वतंत्र पुस्तकें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। हिन्दी जगत के विद्वान आलोचकों का जितना ध्यान बिहारी की रचना ने खींचा है उससे कम अंग्रेजी के विद्वानों का नहीं। बिहारी की सतसई का न केवल रचनात्मक मूल्यांकन किया गया है बल्कि उनकी सतसई के दोहों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया गया है।

इस पुस्तक में बिहारी पर हुए अध्ययन की सामग्रियों में विविध पहलुओं पर केन्द्रित लेखों का कालक्रमानुसार संकलन करने का प्रयास किया गया है। इसके मूल में यह आकांक्षा रही है कि बिहारी की अध्ययन की शुरुआत जब से हुई है तब से बिहारी के बारे में बनती धारणाओं का विकास आगे किस रूप में हुआ, इसकी तफ्तीश की जाए। वैसे तो बिहारी के समकालीनों और परवर्तियों ने उनके सतसई की पांडुलिपियों और टीकाओं में भी उनके जीवन और रचनाकर्म का मूल्यांकन किया है। लेकिन 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब हिन्दी साहित्य के आरंभिक इतिहास पुस्तकों का लेखन होता है, तब से बिहारी के मूल्यांकन का नज़रिया बदलता है। इन इतिहास पुस्तकों में सर्वप्रथम बिहारी का संक्षिप्त परिचय और उनकी रचना का उल्लेख मिलता है। गार्सा द तासी ने बिहारी का संक्षिप्त परिचय दिया है। इसके उपरांत शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में बिहारी के कुछ दोहों को उद्धृत किया है। ग्रियर्सन ने बिहारी के जन्म, आश्रयदाता और सतसई का संक्षिप्त परिचय दिया है।

मिश्रबंधु ने 'हिन्दी नवरत्न' (1910) में बिहारी को भी शामिल किया एवं अपने 'मिश्रबंधु विनोद' (1914) में भी उनके जीवनवृत्त और साहित्य की मूल्यांकन किया है। पादरी ई. एफ. की ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1920) लिखा है जिसमें उन्होंने बिहारी के प्रसिद्धि का कारण उनकी सतसई को माना है और सतसई के दोहों के वर्ण्य विषय के अनुसार वर्गीकरण का आधार आजमशाही पांडुलिपि को माना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) में बिहारी के व्यक्तित्व और रचनाकर्म का साहित्यिक और युगीन अपेक्षाओं के आधार पर मूल्यांकन किया है। वे काव्य–कौशल के निर्वाह के आधार पर बिहारी के दोहों का महत्त्व तो स्वीकारते हैं लेकिन जब इन दोहों को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से

देखते हैं तो उन्हें ये दोहे उपेक्षनीय लगते हैं। यहाँ से बिहारी के मूल्यांकन की एक अलग धारा निकल पड़ती है।

20 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बिहारी की सतसई का अध्ययन और मूल्यांकन को देखें तो इस समय न केवल बिहारी पर केन्द्रित बहस की धूम थी बल्कि यह समय बिहारी के बहाने साहित्य आलोचना में मूल्यांकन के पैमानों के नये आयामों के प्रकाश में आने का समय भी था। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध से लेकर अब तक लगभग 50 से भी अधिक आलोचनात्मक पुस्तकें बिहारी के जीवन, युग और रचना को लेकर लिखी जा चुकी हैं। इन पुस्तकों में बिहारी के रचनाकर्म का सूक्ष्म साहित्यिक विश्लेषण तो किया ही गया उसके साथ ही उनकी रचनाओं में वर्णित युगीन समाजिक यथार्थ को भी उद्‌घाटित करने की कोशिश की गयी है।

बिहारी की तुलना युगीन कवियों से भी की गयी है। उन्हें श्रेष्ठ बताने का विवाद भी छिड़ा है। इस विवाद के प्रभाव में 20वीं सदी के बिहारी के आलोचकों को आकर्षित किया जिससे तत्कालीन पत्रिकाओं में लेख लिखे गये, तो किताबें भी लिखी गयीं। (देव और बिहारी विषयक विवाद : उपलब्धियाँ, किशोरी लाल, हिन्दुस्तानी पत्रिका, हिन्दुस्तानी अकादमी और हरिमोहन संपादित पुस्तक 'बिहारी का काव्य' में भी यह लेख संकलित है।) इस विवाद से यह पता चलता है कि बिहारी के व्यक्तित्व, साहित्य और युग के मूल्यांकन में अपनाए गए मापदंड और कसौटियाँ ने बिहारी के आगामी मूल्यांकन को भी प्रभावित किया है। इस तरह बिहारी के मूल्यांकन की एक परंपरा बनती चली गयी। इस दौरान बिहारी पर हुए विचारों की धाराआएँ विभिन्न संगम और शाखाओं के पड़ावों से होकर गुजरीं। इस पुस्तक की परिकल्पना उन्हीं संगमों और शाखाओं को रेखांकित करने की परियोजना को अमली जामा पहनाने की कोशिश का परिणाम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भटनागर, रामरतन, 1950 ई., बिहारी एक अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद
2. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद, 1960 ई., हिन्दी साहित्य का अतीत–2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
3. मिश्रबंधु, 1967 ई. (1910 ई.), हिन्दी नवरत्न, हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली, प्रयाग
4. शर्मा, पद्मसिंह, 1918 ई., सतसई संजीवनी, ज्ञानमण्डल, काशी
5. शुक्ल, रामचन्द्र, 1929 ई., हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वराणसी
6. स्नातक, विजयेन्द्र (संपा.), 1997 ई., बिहारी, वैभव प्रकाशन, नागपुर